UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180910
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6 S61D

Accession No. GH 2266

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

दिवालोक

शम्भूनाथसिंह

साधना-मन्दिर काशी
की ओर से प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

प्रकाशक :
साधना मन्दिर
काशी ।

दो रुपये

मुद्रक :
गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली ।

श्रद्धेय श्री सम्पूर्णानन्द जी को
जिनके चिन्तन की चट्टान के नीचे
प्रवाहित होने वाली अजस्र
रस-धारा से मेरा कवि
सदा तृप्त होता
रहा है।

पूर्व कथन

'दिवालोक' की अधिकांश कविताएँ मेरे मन की उस गीतात्मक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हैं, जिसके मूल में मेरे वैयक्तिक सुख-दुःख, हास-रुदन का योग अधिक रहा है। इनका रचना-काल सन् १९४९ से १९५० तक है। इस अवधि में मेरे कवि ने अपनी वैयक्तिक चेतना की सीमाओं से संघर्ष करते हुए जिस प्रकार वस्तु-जगत् और लोक-चेतना को अंगीकार करने की सतत चेष्टा की, उसकी अभिव्यक्ति इन कविताओं में क्रमिक विकास के रूप में दिखलाई पड़ेगी। वस्तुतः ये कविताएँ एक संक्रान्ति-काल के कवि की कृतियाँ हैं, जिनमें विषय-वस्तु और रूप-शिल्प में परिवर्तन करने का आकुल आग्रह अन्तर्निहित है, यद्यपि इस परिवर्तन का प्रस्फुटित रूप इन गीतों में अधिक नहीं आ सका है। इस काल की जिन कविताओं में परिवर्तन का स्वर स्पष्ट है, उनमें से कुछ तो 'मन्वन्तर' में आ गई हैं और शेष इस संग्रह में इसलिए नहीं रखी गईं कि उनका 'दिवालोक' के गीतों की मूल भाव-धारा से अधिक सम्बन्ध नहीं है।

काशी-विद्यापीठ
३० अक्तूबर १९५३

—शम्भूनाथसिंह

क्रम

स्वप्न और सत्य	-	-	-	१
सुधि का सावन	-	-	-	३
रजनीगन्धा	-	-	-	४
चाँदनी	-	-	-	५
दीप मैं	-	-	-	६
दूरी	-	-	-	८
मैं तुम्हें बुलाता जाग-जाग	-	-	-	९
प्रश्न	-	-	-	१०
दूसरी चाँदनी	-	-	-	१२
संघर्ष के घन में	-	-	-	१३
आकाश बेल	-	-	-	१४
ओ टूटे हुए सितारो	-	-	-	१५
जी सकूँ चुपचाप	-	-	-	१७
रात के पिछले पहर में	-	-	-	१८
आषाढ़स्य प्रथम दिवसे	-	-	-	२०
एक क्षण	-	-	-	२१
मन बेचारा	-	-	-	२२
आधी रात	-	-	-	२६
रात थी या···	-	-	-	२७
सत्य स्वप्न	-	-	-	२९
जीवन-सत्य	-	-	-	३१
छवि दर्शन	-	-	-	३३
स्वयं से दूर	-	-	-	३४
किसे भूल जाऊँ ?	-	-	-	३६

तृप्ति	-	-	-	३८
पाथेय	-	-	-	४०
तन के पार	-	-	-	४२
प्रीति-धारा	-	-	-	४४
आज	-	-	-	४५
क्षणों के फूल	-	-	-	४६
चकाचौंध	-	-	-	४७
जीवन की आग	-	-	-	४८
पथ में	-	-	-	५०
बढ़ रहे चरण	-	-	-	५२
कर्म-पथ	-	-	-	५४
जन देवता	-	-	-	५५
मुक्ति देवता	-	-	-	५७
तमसो मा ज्योतिर्गमय	-	-	-	५६
मधु ऋतु	-	-	-	६१
सागर की पूर्णिमा	-	-	-	६२
हिमालय-सम्बन्धी पाँच सानेट	-	-	-	६४
विश्व मेरे	-	-	-	६७

स्वप्न और सत्य

स्वप्न की रात है, सत्य का प्रात क्षण !

हासमय गान हैं,
मुग्ध मुसकान हैं,
भीगते जा रहे
किन्तु मन-प्राण हैं,
प्राण, मैं स्नेह-सर का कुमुद हूँ, मुझे
हासमय नींद है, अश्रुमय जागरण !

रंगमय कल्पना,
ज्योतिमय अर्चना,
छल रही प्राण को
पर जलन-साधना,
प्रिय, मिलन-रात का दीप मैं हूँ, मुझे
है सुधामय तिमिर, है गरलमय किरण !

चाँदनी पास है,
तृप्त हर साँस है,
बढ़ गई किन्तु
अनजान में प्यास है,
प्राण के सिन्धु का ज्वार मैं हूँ, मुझे
शूलमय है धरा, फूलमय है गगन !

आँकता रंग भर
मैं तुम्हें प्राण पर,
अश्रु में किन्तु ये
चित्र जाते बिखर,
दूर तुमसे हुआ यक्ष मैं हूँ, मुझे
शापमय याद, वरदानमय विस्मरण।
स्वप्न की रात है, सत्य के प्रात क्षण!

सुधि का सावन

भर गया सजल घन से नभ का सूना आँगन,
सूने नयनों में उमड़ पड़े दो भरे नयन!

काली-काली बरखा की रात घुमड़ आई,
सन्देश वहन करती-सी आई पुरवाई।
भूले प्राणों में बरस गया सुधि का सावन,
खोये नयनों में झलक पड़े दो बड़े नयन!

बिजली बन चमके चपल चरण दो रागारुण,
रिमझिम बूँदों में बरस पड़ी पायल रुनझुन।
सुधि की साँसों से भीग उठा जलता जीवन,
प्यासे नयनों में बरस पड़े जल-भरे नयन!

बह चले पवन-धारा में घन श्यामल-श्यामल,
लहराये मन में फिर काले-काले कुन्तल।
मृत मन को जिला गया सुधि का विषमय दंशन,
रीते नयनों में ढुलक पड़े मधु-भरे नयन!

दिशि-दिशि से उमड़ पड़ीं तम-बेसुध लहरें,
भर गए व्यथा के चित्र विवश मन में गहरे।
घुल गया हृदय के कण-कण में सुधि का अंजन!
बन्दी नयनों में बन्द हुए दो खुले नयन!

रजनीगन्धा

दूर निशा के कुञ्जों में छिपकर
रजनीगन्धा न पुकारो मुझको।

मादकता यों न भरो
गन्ध अन्ध यों न करो
बरबस तुम तन-मन की
चेतनता यों न हरो
यों न सुरभि की ज्वाला सुलगाकर
लपटों के बीच उतारो मुझको।

स्वप्न-विहग मैं पल-भर
कल्पना-तरी लेकर
किरणों से खेल रहा
नभ-सागर बीच उतर
दूर किसी तम-गह्वर में छिपकर
सुधियों के तीर न मारो मुझको।

मौन सुरभि के क्रन्दन
फैलातीं तुम वन-वन
मेरे क्रन्दन केवल
सुनता है नील गगन
मैं भी गलकर जल-धारा बनता
प्रस्तर-प्रतिमा न विचारो मुझको।

चाँदनी

धुले आकाश में यह चाँदनी छाई !
किसी को स्वप्न में जैसे हँसी आई !

वहाँ आकाश धरती मिल रहे हँस-हँस,
यहाँ मैं और मेरी मौन परछाई !

सकुच झीनी किरण के रेशमी पट में
किसी की याद आई आज शरमाई !

स्वयं से दूर कितना हो गया था मैं
कि मुझको पास मेरे चाँदनी लाई !

पिलाया चाँदनी ने तो सुधा-सागर
न मेरी ही अमिट यह प्यास बुझ पाई !

पवन डोला विजन भूमा लता काँपी
किसी ने नींद में ली या कि अँगड़ाई ।

धरा भीगी हुई, हँसते हुए तारे
कि रोती-सी किसी की आँख मुसकाई !

'युगों से राह तेरी देखता कोई'
सँदेशा दे गई यह आज पुरवाई !

मुझे छेड़ा किरन ने गुदगुदाया भी
हँसी आई मुझे लेकिन नहीं आई !

दीप मैं

मैं सभी का हूँ न कोई किन्तु मेरा !

काल के पथ पर सँभलता जल रहा मैं,
आँधियों में भी मचलता जल रहा मैं,
तम-नयन में तारिका-सा झलमलाता
आँसुओं से भीग जलता चल रहा मैं,
मिट रहा पर दे रहा हूँ ज्योति जग को
किन्तु है मिटता नहीं मेरा अँधेरा !

आग से ही खेलना है, प्यार मेरा,
क्योंकि लपटों से हुआ शृङ्गार मेरा,
कौन शलभों का सँभाले प्यार पागल
जब न अपने स्नेह पर अधिकार मेरा,
है मरण का वर उन्हे मेरी शिखा ही
और मुझको शाप मेरा ज्योति-घेरा !

शून्य को मैं सौंपता निश्वास-माला,
दे रहा हूँ कक्ष को निर्धूम ज्वाला,
नींद को हूँ बाँटता रंगीन सपने
जागरण को चिर-प्रतीक्षा का उजाला,
मैं जलन का फूल, खिलता रात में हूँ
मुक्ति है हर साँझ, बन्धन हर सवेरा !

मैं लुटाता जा रहा उल्लास अपना,
विश्व के पथ पर बिछाता हास अपना,
मैं तिमिर की छाँह में घुट जी रहा पर
दे रहा तम को अमर विश्वास अपना,
आँकता हूँ मैं किरण से जीत सबकी
किन्तु अपनी हार का चिर मैं चितेरा !
मैं सभी का हूँ, न कोई किन्तु मेरा !

दूरी

दिन हैं खोये-खोये, भूली-भूली रातें !

सोया स्वर का कम्पन
नभ में बन सूनापन,
नभ-परियों का नीरव
पग-पायल, कटि-किंकिन !
मधु की माया, मुझसे दूर हुई तो लगते
उजड़े उजड़ घन, रीती-रीती बरसाते !

सोई दिन की हलचल,
सिहरा भू का अंचल !
मुरझाई रेशम की,
किरणें कोमल-कोमल !
छवि की छाया, मुझसे दूर हुई, तो लगती
सूनी-सूनी दुनिया, बदली-बदली बातें !

टूटा रस का प्याला,
सोई मधु की ज्वाला !
टूटी नभ के उर की
सुरधनु की जयमाला !
कंचन काया, मुझसे दूर हुई तो लगते
बिखरे-बिखरे बन्धन, टूटे-टूटे नाते !
दिन हैं खोये-खोये भूली-भूली रातें !

मैं तुम्हें बुलाता जाग-जाग

मैं तुम्हें बुलाता जाग-जाग ओ सपनों की रानी !

दिशि-दिशि से मुझको घेर घुमड़ आए तम के ये घन,
झर-झर बेसुध करते मुझको सुधि से सुरभित जल-कण,
चाँदनी तड़पती होगी तुम लपटों की शय्या पर
पर पहुँच न पाएगा तुम तक इन नयनों का पानी।
मैं तुम्हें बुलाता जाग-जाग ओ सपनों की रानी !

सूने नभ को मैं बाँध रहा अपने भुज-बन्धन में,
सुन रहा तुम्हारा क्रन्दन मैं अपने ही क्रन्दन में,
तुम किरण, कहीं उलझी होगी रोती कण्टक-वन में
पर पहुंच न पाएँगी तुम तक ये बाहें वरदानी।
मैं तुम्हें बुलाता जाग-जाग ओ सपनों की रानी !

मैं भटक रहा हूँ प्यास-विकल तम के मरु का मृग बन,
मुझ जलने के विश्वासी को छलता भ्रममय जीवन,
तुम दीपशिखे, जलती होगी एकाकी झञ्झा में
पर छू न सकेगा तुम्हें शलभ, प्राणों का बलिदानी।
मैं तुम्हें बुलाता जाग-जाग ओ सपनों की रानी !

मैं तुमको रहा पुकार तुम्हारे सपनों का सहचर,
बहते तम-लहरों पर बेसुध प्यासे बन्धन के स्वर,
कल्पने, खोल बैठी होगी नयनों के वातायन
पर पहुँच न पाएगी तुम तक कवि की बेबस वाणी।
मैं तुम्हें बुलाता जाग-जाग ओ सपनों की रानी !

प्रश्न

तुम्हें याद मेरी न आती कभी क्या ?

बँधी तुम कहीं प्यास के बन्धनों में,
बँधा मैं विकल तृप्ति के इन घनों में,
सुखी तुम दुखों में, दुखी मैं सुखों में,
बने एक-से हम विरह के क्षणों में।
तुम्हारे अधर के क्षितिज पर उषा बन
हँसी खेल जाती न मेरी कभी क्या ?

तुम्हींने कभी अंक में भर लिया था,
ज्वलित प्राण से प्राण ज्योतित किया था,
बुझी लौ तुम्हारी, रहा जगमगा मैं,
भला था तभी जब बुझा-सा दिया था।
तुम्हारे प्रणय-दीप को ज्योति बनकर
जलन है जलाती न मेरी कभी क्या ?

तुम्हींने कभी चाँद मुझको कहा था,
मधुर हास फिर चाँदनी बन बहा था,
बनी रात अब वह दिवा-स्वप्न मेरा,
कि जिसमें धरा से गगन मिल रहा था।
तुम्हारे हृदय-शून्य में चाँदनी बन
किरण जगमगाती न मेरी कभी क्या ?

न विद्रोह तुम कर सकीं बन्धनों से,
बिछुड़ मैं गया अश्रु ज्यों लोचनों से,
बसा गिरि-शिखिर पर प्रिये, आज तुमको,
सँदेशा सजल भेजता मैं घनों से।
तुम्हारे नयन की घटा में तड़ित बन
व्यथा मुसकराती न मेरी कभी क्या ?
तुम्हें याद आती न मेरी कभी क्या ?

दूसरी चाँदनी

है वही चाँद, पर दूसरी चाँदनी !

है वही याचना,
है वही अर्चना,
है वही मीड़ भी
है वही मूर्च्छना,
दूर तुम, काल की बीन से उठ रहा—
है वही गीत, पर दूसरी रागिनी !

है वही तो किरन,
है वही तो गगन
है वही प्यास भी
है वही ओस-कन,
दूर तुम, काल की धार में बह रहे—
है वही स्वप्न, पर दूसरी यामिनी।

है वही जागरण
है वही मौन क्षण
फिर वही साधना
फिर वही अश्रुधन
दूर तुम, काल के अंक में भर रहे—
है वही मेघ, पर दूसरी दामिनी।
है वही चाँद, पर दूसरी चाँदनी !

संघर्ष के घन में

प्राण, क्या पहचान लोगी ?

चाँदनी तुमने लुटाई,
रात मेरी मुस्कराई,
दो तटों की स्नेह-धारा
विश्व बीच समा न पाई !
आज जब तममय गगन मे खो गई तो दूर से ही
अश्रु में वह घुल गई मुस्कान क्या पहचान लोगी ?
प्राण, क्या पहचान लोगी ?

गीत था तुमने बनाया,
और मैंने स्वर उठाया,
दो हृदय की रागिनी ने
भू-गगन को था गुँजाया,
आज जब संघर्ष के घन में कहीं तुम छिप गई तो
आँधियों में खो गया वह गान क्या पहचान लोगी ?
प्राण, क्या पहचान लोगी ?

ज्योति-कण तुमने लुटाया,
स्वप्न मैंने सच बनाया,
प्यास की पाँखें जलीं, तम
लुट गया, जग मुस्कराया,
आज जब काले क्षितिज पर सो गई, तुम स्वप्न में तो
इस शलभ के अधजले अरमान क्या पहचान लोगी ?
प्राण, क्या पहचान लोगी ?

आकाशबेल

मैं तुमसे ऐसा भरा कि जैसे माँग बीच सिंदूर !
गुदने-सी अंकित तुम मुझ पर, अब पास रहो या दूर !

ओ अमरबेल, तेरा आकाशी बन्धन चक्करदार,
आमूल-शिखर घिर तुमको मैंने लिया शीश पर धार !
सपनों की जादूगरी कहूँ या आसमान का खेल,
रेशमी छाँह दे फिर काँटों-सी गड़ने वाली बेल !
अब सूखूँ या मैं हरा रहूँ, पर हूँ तुमसे भरपूर !
गुदने-सी अंकित तुम मुझ पर, अब पास रहो या दूर !

इन प्राणों की हरिपटी रँगी ज्यों सोनजुही के रंग,
मेरे अंगों में लिपट गया 'तुम' बनकर आज अनंग !
पत्तों-सी आँखें मुँदी हुई बेबस डालों-सी बाँह,
यह हँसी, कि हँस-हँस आज रहा मैं फूटा भाग सराह !
यह बन्धन धन्य कि उड़ा न अब तक मेरा प्राण-कपूर !
गुदने-सी अंकित तुम अब, चाहे पास रहो या दूर !

मदहोश वसन्ती हवा, गमकता है छितवन छितनार,
जग आधी-आधी रात कहीं करती बेला शृङ्गार !
ऐसे में मेरा मधुर प्रतीक्षा का प्यासा अभिसार,
ओ मनगन्धा, मैं तुम्हें कहाँ खोजूँ इस तन के पार !
यह आलिङ्गन का कवच कर रहा मुझको चकनाचूर !
गुदने-सी अंकित तुम अब, चाहे पास रहो या दूर !

ओ टूटे हुए सितारो !

मेरे तममय जीवन-नभ के ओ टूटे हुए सितारो
अनजान दिशाओं से मुझको सुधियों के तीर न मारो

मुझको तम का प्रहरी बनकर चलने दो
बन दीप अचंचल जग-पथ पर पलने दो
सन्देश स्वप्न के शलभों से मत भेजो
चुपचाप मुझे तुम एकाकी जलने दो
हे उड़ा दिया मैंने जिन अरमानों को धुओं बनाकर
मत मेरे नयनों मे उनके तुम धूमिल चित्र उतारो।
ओ टूटे हुए सितारो !

मत जलने वाले की मृत प्यास जगाओ
मत मरु का मृग-जल बन मुझको भरमाओ
इस जीवन की मझधार मुझे बहने दो
अज्ञात क्षितिज के पार न मुझे बुलाओ
लिख-लिख अतीत की कथा गजल मानस की लघु लहरों पर
भेजो न दया कर तुम मुझ तक ओ भस्मावृत अंगारो।
ओ टूटे हुए सितारो !

बह गए ज्वार कितने मेरे ऊपर से
गति रुकी न मेरी कभी मरण के डर से
मेरी किरणों की तरी हुई जगमग पर
किस दूर देश से चले तुम्हारे स्वर से

मुझको नभ से भू पर फैलाने दो निज किरणों के कर
मेरे ऊपर मत दर्दीले गीतों के पंख पसारो।
ओ टूटे हुए सितारो!

मैं बनूँ भूल तुम भूली हुई निशानी
तम में ज्योतिर्मय लिखूँ अनन्त कहानी
जीवन्मृत मुझको जान न सुधि से छेड़ो
प्रस्तर से फूट बहे, करुणा कल्याणी।
बन अमृत सकूँ मृण्मय जग में मैं ज्योतिर्मय जीवन भर
मेरी काली छाया बनकर तुम कभी मुझे न पुकारो।
ओ टूटे हुए सितारो!

जी सकूँ चुपचाप

प्रिय मैं जी सकूँ चुपचाप !

जब किया स्वीकार बन्धन,
जब चला था हार तन-मन,
तब न थे यदि नयन में घन,
आज तो रह विस्मरण में
ही सकूँ चुपचाप।
प्रिय मैं जी सकूँ चुपचाप !

तुम पुकारो पार से जब,
स्वर सुनूँ स्वरकार के जब,
मैं तुम्हारा प्यार ले तब,
प्रिय तुम्हारे चरण पर मर
भी सकूँ चुपचाप।
प्रिय मैं जी सकूँ चुपचाप !

मौन मेरा मुखर स्वर हो,
मौन का अभिशाप वर हो,
मौन ही मेरा अमर हो,
प्राण, हँस-हँस इस गरल को
पी सकूँ चुपचाप।
प्रिय मैं जी सकूँ चुपचाप !

रात के पिछले पहर में

चल रहा सुनसान पथ पर मैं अकेला,
छोड़ पीछे आ रहा रंगीन मेला !

चाँदनी है, रात का पिछला पहर है,
गीत मेरा, और यह मेरी डगर है,
लग रहा मुझको युगों के बाद जैसे
आज मुझमें फिर जगी यौवन-लहर है,
छोड़ता मैं जा रहा पथ के किनारे
चाँदनी के चित्र धरती पर सँवारे,
चाँद पश्चिम में झुका, प्राची क्षितिज पर
द्वार तम के खोलता छिप-छिप उजेला !

मन्द पुरवाई बही, कुछ घिर गए घन,
खेलते हैं चाँद के ये मूँद लोचन,
किन्तु चौदस चाँद ने अब मुँह छिपाया
और क्षण में हो गया सब दृश्य नूतन,
ज्योति-तम हैं, नीर-क्षीर समान मिलकर
लग रहा आवृत-अनावृत, सत्य-सुन्दर,
एक दृश्य रहस्य-सा लगता सभी कुछ
देखता मैं भूल सब उलझन-झमेला !

प्रेत-छाया-से खड़े ये वृक्ष सारे,
रात है अब भी रुकी जिनके सहारे,
लग रहा अब सिन्धु-सा नीला गगन है
और नीचे सिन्धु-तल से खेत प्यारे,

ग्राम-पंछी जागरण का स्वर सुनाता
स्वप्न है सुनसान का ज्यों टूट जाता,
बढ़ रहा मैं, बढ़ रही है काल की गति
पास ही है नील-लोहित प्रात-वेला !

प्राण में अवसाद, पर गति है चरण में,
जा रहा अज्ञात भावी की शरण में,
यह थका जीवन चुनौती दे रहा है
देखना है शक्ति कितनी है मरण में,
किन्तु पीछे खींचता कोई निरन्तर
याद पर हिम प्रश्न औ' अंगार उत्तर,
चल रहा आगे इसीसे पग बढ़ाता
छोड़कर पीछे प्रणय का खेल-खेला !
चल रहा सुनसान पथ पर मैं अकेला !

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे

प्राण, यों घिर-घिर न आओ !
नयन में घिर-घिर न आओ !

आज है आषाढ़ का पहला
दिवस, ये बरसते घन,
फूट जीवन के वहे सब
बाँध, टूटे आज बन्धन,
बाढ़ में इन आँसुओं की
तुम यहाँ तिर-तिर न आओ !

मानता मैंने निठुर बन
बाँह थी तुमसे छुड़ाई,
किन्तु किस पथ का पथिक मैं
जान क्या तुम भी न पाई ?
आज डूबे को डुबाने
तुम यहाँ फिर-फिर न आओ !

हार जीवन में न खाई
हार पर तुमसे गया मैं,
प्यार, उससे दूर हूँ,
अब चाहता तुमसे दया मैं,
स्वप्न में उठ-उठ न आओ,
अश्रु में गिर-गिर न आओ !
नयन में घिर-घिर न आओ !

एक क्षण

काँपती पुकार मौन हो गई!
चीर अन्धकार मौन हो गई!

मन्द गन्ध-सी लहर पुकार की
काटती अतीत के कगार को,
यह पुकार स्वप्न-लीन प्यार की
छेड़ती हुई मरे बहार को—
पास आ हृदय-समीप सो गई।
हो अचेत, चेतना डुबो गई!
काँपती पुकार मौन हो गई!

एक क्षण अतीत-गीत हो उठा
एक क्षण कि देश-काल मिट गए,
वर्तमान-सा अतीत हो उठा
पास दूर के सवाल मिट गए,
नींद सो गई खुमार खो गई
प्यास-सिन्धु-बीच धार खो गई।
काँपती पुकार मौन हो गई!
चीर अन्धकार मौन हो गई!

मन बेचारा

तुम्हें बुलाता हारा
मन बेचारा !

जग के संकुल पथ पर
बढ़ा अकम्पित पग धर
काँटों ने बिलमाया
उलझ-उलझ सुलझाया—
निज दुकूल
जिसमें सुधियों के बाँधे तुमने फूल,
मेरे साथ-साथ इस पथ पर
चलता मुझमें गति भर
छाया बनकर
मधुमय प्यार तुम्हारा !
फिर भी कितनी दूर-दूर
ओ जीवन की ध्रुवतारा !
तुम्हें बुलाता हारा,
मन बेचारा !

तुम्हें भुलाता हारा
मन बेचारा !
पथ अति दुर्गम,
तन श्लथ, दिग्भ्रम,
निद्रालस ये लोचन

जिनमें जाग रहे करुणाघन
दो मुक्ता-मण्डित सीपों-से नयन
बँधे-से खंजन ।
मैं अभिशप्त
राह के सूने रंगमंच का नटवर,
निभा रहा भूमिका भयंकर
अन्तहीन अति दुर्भर ।
अन्धकार का सागर,
डूबे धरती-अम्बर,
अतल गह्वरों से रह-रहकर
आकर ऊपर तल पर
तैर रहे ज्योतित मछली-से मन्थर
युगल नयन
जल के जुगनू-से
जलते-बुझते रह-रह;
मैं बढ़ता, तैरतां धारा में बह-बह
जाता निकट कभी,
हो जाता दूर कभी,
दुख दुस्सह;
यह जीवन या जीवन-नाटक
तुमने कभी विचारा !
तुम्हें भुलाता हारा
मन बेचारा !

तुम्हें सुलाता हारा
मन बेचारा !
जिसका कहीं न इति-अथ
यह अनन्त नीरव पथ
फिर भी जिस पर प्रतिपल
करता है अतीत कोलाहल
मुखरित प्राणों का वन—

बजती रोम-रोम से मुरली निस्वन
वर्तमान से कितना सुखद पलायन !
पर धिक् रे मन !
यदि चरणों में है गति
उर में कम्पन,
तो अतीत क्या बन सकता है बन्धन ?
ओ निर्बन्ध,
स्पर्श तो कर लो इस क्षण
सुप्त प्रिया के लोचन
धीरे-धीरे पाँव दबाकर
जाओ प्रिया-कक्ष में
सुमन-रचित शय्या पर
वह देखो वह लेटी बाला
चित्र-सरीखी
पर क्या
वह तो जाग रही है
मेरे अन्तर की प्रतिमूर्ति
हृदय की स्फूर्ति
मुझे निरन्तर जो रखती है जाग्रत
कर्म-निरत जो,
अन्य नहीं यह, वही वही है ।
ओ मुरझाई कली !
स्वप्न की छली !
सुरभि अपनी दे-देकर
भरती क्यों मुझमें गति की बेकली ?
गति मेरी वरदान
याद पर तुम्हे
तुम्हारी अनभूली पहचान
स्वर मेरा निर्बन्ध
बन्धमय किन्तु तुम्हारे गान !
बहुत हो चुका

अपलक निद्रा-हीन तुम्हारा
बहना प्रतिपल
मेरे जीवन-सागर की लहरों पर चंचल।
अब भी अपने पलक
करो तो बन्द,
स्वप्न का शीतल मिले किनारा !
तुम्हें सुलाता हारा
मन बेचारा !

आधी रात

रात आधी हो चली, क्यों नींद मेरी
दूर जाकर खो गई है किसी घर के
निभृत कमरे में, जहाँ शृङ्गार करके
जागरण में स्वप्न-चित्रों की चितेरी
पलक मूँदे ध्यान में है मग्न बाला!

रात आधी हो गई है, ज्ञान इसका
है न उसको, कल्पना का लोक जिसका
जगमगाता, है जहाँ दिन-सा उजाला
अनवरत। वह रूप नयनों में समाया;
फूल वह अब शूल बनकर गड़ रहा है
नयन में मन में। दिखाई पड़ रहा है
मुझे तम के पार·····अब वह रूप-छाया
हिल रही है, आ रही है पास मेरे।
दूर हो जा सामने से ओ अँधेरे!

रात थी या····

रात थी या एक सपना ?

वंचिता सब भाँति घन से,
वंचिता दो अश्रु-कण से,
जल चुकी थी मृत्तिका
अपने हृदय की ही जलन से,
भीग पर सहसा उठे कण-कण
मधुर जीवन-सुधा से,
यह किसी के प्यार की
बरसात थी या एक सपना ?

घेरकर मन को गगन को,
घेरकर उर को किरन को,
कर दिया तम में बराबर
था यहाँ जीवन-मरण को,
पर अचानक ज्योति की धारा
कहीं से फूट आई,
यह तिमिर में चाँदनी
मधु-स्नात थी या एक सपना ?

माँगते जिससे मिलन-क्षण,
माँगते जिससे किरण-कण,
युग गये पर सत्य हो
पाए न वे रंगीन बन्धन,

पर बुझा जिसने दिया वह
दीप प्यासी कल्पना का,
वह किसी की साँस की
मधु वात थी या एक सपना ?

मौन का शृङ्गार गुञ्जन,
मौन का अधिकार गुन-गुन—
खो गए थे, सो गया था
सृष्टि का भी प्राण-स्पन्दन,
गूँज कोई रागिनी सहसा
उठी जल-थल-गगन में,
यह विरह में चिर मिलन की
बात थी या एक सपना ?
रात थी या एक सपना ?

सत्य स्वप्न

प्रात बनकर मुसकराती जा रही हो !
स्वप्न मेरे सच बनाती जा रही हो !

बादलों से तृप्ति की जब आश त्यागी,
बेसुधी में पत्थरों से भीख माँगी,
मिल सकीं दो बूँद प्यासे को नहीं पर
अश्रु पीकर सो गई आँखें अभागी,

पर खुली जो आँख तो क्या देखता हूँ,
उर्वशी-सी स्वप्न-सागर से निकलकर
तुम सुधा मुझको पिलाती जा रही हो !
तृप्ति-धारा में डुबाती जा रही हो !

प्रेम का था देवता बनने चला मैं,
पर गया संसार से कितना छला मैं ?
आरती अपनी सँजो निज अश्रु से ही
एक जड़ पाषाण-प्रतिमा-सा गला मैं,

पर हुआ जब चेत तो क्या देखता हूँ,
तुम पुजारिन बन खड़ीं मेरे भवन में
दीप साँसों के जलाती जा रही हो !
फूल प्राणों के चढ़ाती जा रही हो !

शक्ति, विथकित पाँव की जब डगमगाई,
ठोकरों ने भी मुझे ठोकर लगाई,
पाश में विषधर विषम-तम के बँधा फिर
काल ने पहचान जीवन की मिटाई,

पर हुआ जब होश तो क्या देखता हूँ,
तुम उषा की अप्सरा बनकर गगन में
रात के परदे उठाती जा रही हो !
राह में कुमकुम बिछाती जा रही हो !

दूर मुझसे विश्व का रंगीन मेला
था, बना जीवन अमा की मौन वेला,
छूटकर रसमय धरा की तान लय से
खो गया नभ-बीच मेरा स्वर अकेला,

पर हुआ जब ध्यान तो क्या देखता हूँ,
तुम खड़ी साकार पूनम-रागिनी बन
गीत मेरे साथ गाती जा रही हो !
सृष्टि-स्वर में स्वर मिलाती जा रही हो !
स्वप्न मेरे सच बनाती जा रही हो !

जीवन-गीत

मिल गया ज्यों आज जीवन-गीत का भूला चरण है !

ज्योति है निर्माण मेरा,
तृप्ति ज्वाला-गान मेरा,
बन गया है अब तुम्हारा
शाप ही वरदान मेरा,
दीप तुम, मैं हूँ तुम्हारी वर्त्तिका, मुझको तुम्हारा—
स्नेह ही पहला प्रकम्पन, स्नेह ही अन्तिम शरण है !

लय तुम्हारी प्यास मेरी,
गति बनी हर साँस मेरी,
बन गई स्वर से सुधामय
आज तप्त उसाँस मेरी,
वेणु तुम, मैं हूँ विजन का मुग्ध मृग, मुझको तुम्हारी—
गूँज ही विषमय निमन्त्रण, गूँज ही मधुमय मरण है !

खिल गया उल्लास मेरा,
फल गया विश्वास मेरा,
बन गया है स्वप्न का सुख
आज सत्य विलास मेरा,
तुम मधुर मधुमास, मैं हूँ गीत खग, मुझको तुम्हारा—
स्वप्न ही मधु-गीत की सुधि, स्वप्न ही स्वर-विस्मरण है !

रंगमय है प्यार मेरा,
रस भरा संसार मेरा,

है तुम्हारी अर्चना ही
गन्ध मधु विस्तार मेरा,
तुम किरनमय प्रात, मैं हँसता कमल, मुझको तुम्हारी—
याद ही है नींद बेसुध, याद ही मृदु जागरण है!
मिल गया ज्यों आज जीवन-गीत का भूला चरण है!

छवि-दर्शन

जब तुम्हें देख लेता हूँ मैं !

खुल जाते शत-शत राम-नयन,
जग जाता प्राणों में गुञ्जन,
मतवाली सुरभि-हिलोरों से
बेसुध बन जाते हैं कण-कण,
मन की कलियाँ खिल जाती हैं
जब तुम्हें देख लेता हूँ मैं !

बह जाता लहरों में जीवन,
रँग उठते किरनों से लोचन,
प्राणों को सिहरा देता है
सुरभित साँसों का मलय-पवन,
उर की डालें हिल जाती हैं
जब तुम्हें देख लेता हूँ मैं !

गति से भर जाते शिथिल चरण,
खुल जाते जग के जड़-बन्धन,
स्वरमय बन जाता मौन-मिलन
जीवन फिर बन जाता जीवन,
खोई दुनिया मिल जाती है,
जब तुम्हें देख लेता हूँ मैं !

स्वयं से दूर

तुम्हारे पास ज्यों-ज्यों आ रहा मैं,
स्वयं से दूर होता जा रहा मैं !

रहे ज्वाला भरे क्षण बीत मेरे,
खिले जिनमें सुरभिमय गीत मेरे,
रहा मैं हार अपनी इस विजय से
रहे अरमान हारे जीत मेरे,
मुझे क्षण-क्षण हँसाती जा रहीं तुम,
हँसी मेरी कि रोता जा रहा मैं !

खिलीं तुम दामिनी बन प्राण-घन में,
कि जीवन-लौ जगी तममय मरण में,
कहाँ वह चाँदनी छिप-सी गई पर
कि जिसकी छाँह में सोया तपन में,
प्रभा अपनी अमित बरसा रहीं तुम,
नयन की ज्योति खोता जा रहा मैं !

चलीं उद्दाम तुम निर्झर लहर बन,
गिरा तट पर खड़ा मेरा विटप मन,
लता पर छूट वह मुझसे गई क्यों
बने वरदान जिसके बाहु-बन्धन,
कहीं मुझको बहाती जा रहीं तुम,
मगर निज को डुबोता जा रहा मैं !

लिये मधु तुम मिलीं जीवन-डगर में,
उषा-सी रात के अन्तिम प्रहर में,
परस से पर मिटी क्यों जलपरी वह
मिली जो स्वप्न की पहली लहर में,

मुझे बेसुध बनाती जा रहीं तुम,
मगर सुधि-भार ढोता जा रहा मैं !
तुम्हारे पास ज्यों-ज्यों आ रहा मैं,
स्वयं से दूर होता जा रहा मैं !

किसे भूल जाऊँ ?

किसे भूल जाऊँ, किसे प्यार कर लूँ ?

मदिर मधु-किरण है,
मदिर स्वर्ण-घन है,
मदिर कम न गृह-दीप
की पर शरण है,
किसे स्वप्न के इन्द्र-धनु-सा मिटा दूँ
समझ सत्य लौ चूम किसके अधर लूँ ?

अमर साधना-धन,
अमर प्यास के क्षण,
अमर पर न क्या
तृप्ति का एक ही कण ?
किसे अर्चना की सुरभि-सा उड़ा दूँ
किसे सिद्धि-चन्दन समझ भाल पर लूँ ?

मधुर अश्रु - बन्धन,
मधुर मौन क्रन्दन,
मधुर पर न क्या
मन्द मुस्कान - दंशन ?
नयन-धार में प्यास किसकी बहा दूँ
तृषित बाहु में बाँध किसकी लहर लूँ ?

अमिट है क्षितिज पर
रजत - रात का स्वर,

अमिट प्रात का भी
कनक - गान सुन्दर,
किसे शापमय रागिनी-सा भुला दूँ,
किसे मान वरदान-स्वर प्राण भर लूँ ?
किसे भूल जाऊँ, किसे प्यार कर लूँ ?

तृप्ति

भर दिए प्राण तुमने अमर गान से !

फिर अमृत स्वर उठे,
कालजित् स्वर उठे,
सृष्टि के प्राण जिनसे
पुलक भर उठे,
दूर तुमसे हुआ मौन मैं बाँसुरी
गा उठा फिर अधर स्पर्श के दान से।

स्वप्न सच हो गए,
अश्रु - घन खो गए,
प्राण फिर चाँदनी—
अंक में सो गए,
दूर तुमसे हुआ मैं अचल तम-प्रहर
पूर्णिमा-क्षण बना एक मुसकान से।

लासमय फिर पवन,
हासमय भू - गगन,
फिर लहर में रँगे
ज्योति के चल चरण,
दूर तुमसे हुआ बन्द जलजात मैं
खिल गया फिर तुम्हारे किरन-बाण से !

मिट गए द्वन्द्व-क्षण,
मिट गई उर-जलन,

सिद्धि अब बन गई
मौन मेरी रटन,
दूर तुमसे हुआ प्यास का मैं विहग
स्वाति-घन बन गया मौन-आह्वान से !
भर दिए प्राण तुमने अमर गान से !

पाथेय

बाँधो, मेरे इन प्राणों को रेशम की कड़ियों से बाँधो !

जीवन अब पथ का आकर्षण,
यौवन - ज्वाला का आलिंगन,
सुधि की पुरवाई में बरबस
पर रुके तुम्हारे द्वार चरण,

पथ का हारा मन माँग रहा गतिमय मुसकानों का बन्धन,
मत इस मंगलमय वेला को आँसू की लड़ियों से बाँधो !

रिमझिम से भीग उठा जीवन,
घन के चित्रों से भरे नयन,
रस की प्यासी जलती धरती
भी जाग उठी ले नवजीवन,

अंगारों पर चलने वाला परदेशी क्षण-भर आज रुका,
बाँधो इस जलते जीवन को मधुमय फुलझड़ियों से बाँधो !

छूटा मुझसे मधु का सागर,
छूटे पीछे कुञ्जों के स्वर,
क्षण-भर को पर मरु के मग में
लहराये घन, गूँजा अम्बर,

मेरे पथ का संगीत बने जिसकी सुधि प्राणों में घिर-घिर,
बाँधो मेरे सूनेपन को गुञ्जन की घड़ियों से बाँधो !

मरु दिशा-हीन, पथ-हीन विजन,
जिसमें रुक-रुक बहता जीवन,

मन की सुनसान दिशाओं के
बन्दी बन जाते शिथिल चरण,
दुर्गम पथ पर चरणों की गति बन जाए यह पावन बन्धन,
बाँधो मेरे बिखरे मन को कर-कमल-पँखुरियों से बाँधो।
बाँधो, मेरे इन प्राणों को रेशम की कड़ियों से बाँधो!

तन के पार

चार दिन की चाँदनी मेरी नहीं है,
प्यास तन की बन्दिनी मेरी नहीं है !

दो हृदय से जो बही थी एक धारा,
आज है उसका नहीं कोई किनारा,
बह चली तट प्रात-सन्ध्या के डुबोती
काल-दिशि के बन्धनों की तोड़ कारा,
ज्योति-तम जिसकी हँसी में बह गए हैं
अश्रु - भीगी यामिनी मेरी नहीं है !
ज्वार मेरे द्वार पर लहरा रहा है
प्यास कण की बन्दिनी मेरी नहीं है !

चार नयनों से उठे जो घन हठीले,
इन्द्र-धनु ले हास-रंजित अश्रु गीले,
भर गए वे आज घिर जीवन-गगन में
दे रहे हैं भूमि को सपने रँगीले,
ज्योति-लहरों में तरंगित विश्व जिसकी
एक मेरी दामिनी मेरी नहीं है !
हर किरण जिसकी गई बन ज्योति-सागर
प्यास घन की बन्दिनी मेरी नहीं है !

जब हुई दो कण्ठ की झंकृत शिराएँ,
तान लय में लिख गईं सौ-सौ कथाएँ,

आज जग का हो गया इतिहास मेरा,
विश्व का धन बन गईं मेरी व्यथाएँ,
जो युगों के छोर स्वर से छू रही है
एक क्षण की रागिनी मेरी नहीं है !
हर लहर जिसकी बनी है तृप्ति-धारा
प्यास क्षण की बन्दिनी मेरी नहीं है !

चार चरणों से बनी जो अंक-लेखा,
था जिसे मैंने कभी रुककर न देखा,
आज एकाकी उसे मुड़ देखता जब
बन गई है राज-पथ वह क्षीण रेखा,
चल रहा, अब कर्म-पथ पर पग बढ़ाता—
काम हूँ मैं, कामिनी मेरी नहीं है !
चल रही जो लोक की सहगामिनी बन
प्यास मन की बन्दिनी मेरी नहीं है !
चार दिन की चाँदनी मेरी नहीं है !

प्रीति-धारा

धारा - सी प्रीति बह रही,
बन कगार गीति रह रही !

देते ये ध्वनित गान
पद-पद पर नया ज्ञान
जीवन - सरि प्रवहमान
प्राण की प्रतीति कह रही !
धारा-सी प्रीति बह रही !

काट रहा जीवन-रस
आयु के गिने दिन दस,
काल की भुजा में कर
बालू की भीति ढह रही !
धारा-सी प्रीति बह रही !

क्षण-क्षण यह अबुझ चाह
खोज रही नई राह
तृप्ति लिये अमिट दाह
प्यास की अनीति सह रही !
धारा-सी प्रीति बह रही !

आज

हाल बीच सन्नाटे में ज्यों गूँज उठे आवाज़ !
झपकी की दुनिया में वैसे झमक उठीं तुम आज !

भीड़ भरे मन्दिर में जैसे
उठे अगरु की गन्ध,
धूप-छाँह की झिलमिल में त्यों गमक उठीं तुम आज !

धूलभरी आँधी आँधी में
ज्यों बिजली की कौंध,
थकी उनींदी आँखों में त्यों चमक उठीं तुम आज !

एवरेस्ट पर, अतलान्तक में
दीप्त एक ज्यों चाँद,
मेरे माथे पर, मन में त्यों दमक उठीं तुम आज !

दोपहरी में चलते-चलते
जैसे रुके बयार,
दिवा-स्वप्न में चलती-सी त्यों थमक उठीं तुम आज !

क्षणों के फूल

हैं झर रहे फूल बीते क्षणों के !

तेरी चकित दृष्टि
करती सुधा-वृष्टि
छिपकर घने कुञ्ज में गत दिनों के !
हैं झर रहे फूल बीते क्षणों के !

तेरे चरण-छन्द
बन काल-स्वच्छन्द
करते स्वरित पंथ के बन्धनों के !
हैं झर रहे फूल बीते क्षणों के !

तेरी धवल छाँह
संगिनि बनी, राह—
पर पोंछती अश्रु-कण लोचनों के !
हैं झर रहे फूल बीते क्षणों के !

तेरे सपन आज
निज में नयन आज
हैं देखते पार तममय घनों के !
हैं झर रहे फूल बीते दिनों के !

चकाचौंध

घिरो न इस द्वार !
संयम की किरणों को
छेक बार-बार !

सूर्य-चन्द्र से झलमल कुण्डल
काँप रहे छवि - जल में चंचल,
सुनता हूँ सहम
चकाचौंध की पुकार!
डूब गई कहीं
आस-पास की गुहार!

वंकिम गति का प्रसार भू पर
उभर रहा वक्ष - ज्वार ऊपर,
अन्तहीन सागर
यह हँसी की फुहार,
दृग-तट से तुममें
मन उड़ा पंख मार !
घिरो न इस द्वार !

जीवन की आग

बन्दिनी अब तक जवानी हो न पाई !
प्यास प्राणों की पुरानी हो न पाई !

ज्योति देकर है उसे कोई जलाता,
और तम देकर उसे कोई बुझाता,
रात है हिम-खण्ड-सा जिसको गलाती
और दिन है ज्योति-धारा में बहाता।
किन्तु जो वह था सदा अब भी वही है,
प्राण की उसकी सुधा चुकती नहीं है,
चाँद की धुँधली निशानी हो न पाई !
चाँदनी उसकी पुरानी हो न पाई !

चाँद ने उसको किरन से छू जगाया,
ज्वार प्राणों में भरा पागल बनाया,
चाहकर भी किन्तु दोनों मिल न पाये
राह में दीवार-सी थी शून्य काया !
मिट न पाई आज तक यह नील दूरी,
जो अधूरी थी सदा अब भी अधूरी,
प्यार की पूरी कहानी हो न पाई !
साध सागर की पुरानी हो न पाई !

दूर से ही सिन्धु-अधरों ने पुकारा,
बह चली वह पर्वतों की तोड़ कारा,
हो गई मिल एक प्रिय से किन्तु फिर भी
दूर कितनी दूर उससे सिन्धु-खारा।

मिल गई मंज़िल उसे, वह राह है, पर,
बढ़ रही है, है उसे बहना निरन्तर,
बन्द है उसकी रवानी हो न पाई !
प्रीति सरिता की पुरानी हो न पाई !

दूसरी कोई न मानव की कहानी,
हार जीवन से कभी उसने न मानी,
वह निरन्तर जल रहा पर चल रहा है
काल-मरु में राह है उसको बनानी ।
आदि मानव ने कभी जिसको जलाया,
आदमी को आदमी जिसने बनाया,
आज भी वह आग पानी हो न पाई !
हो पुरानी भी पुरानी हो न पाई !
वन्दिनी अब तक जवानी हो न पाई !
प्यास प्राणों की पुरानी हो न पाई !

पथ में

जब-जब मुझे ध्यान आया तुम्हारा,
मुझको नई मंज़िलों ने पुकारा !

जीवन रहा राह,
पाथेय पथ - दाह,
शीतल मिली किन्तु
सुधि की सघन छाँह,
जब-जब बना कल्पना - कूल कारा,
मझधार में प्राण तुमने उतारा !

भूली प्रणय-पीर,
रीता नयन - नीर,
संघर्ष बनता गया
द्रौपदी - चीर,
जब हारकर बन गया आत्महारा,
तुमने मुझे चेतना - तीर मारा !

जब स्वप्न का फूल,
मिटकर बना धूल,
जग याद था और
तुमको गया भूल,
तुमने नहीं किन्तु मुझको बिसारा,
देती रहीं नित्य गति का सहारा !

तुम तृप्ति बन, प्यास—
में आ गई पास,

था जब लगा टूटने
आत्म - विश्वास,

जब-जब लगे पाँव कसने किनारा,
तुम स्वप्न बन भर गई शक्ति-धारा !
जब-जब मुझे ध्यान आया तुम्हारा,
मुझको नई मंज़िलों ने पुकारा !

बढ़ रहे चरण

पथ पर बढ़ रहे चरण !

श्रम - सीकर से सिंचित,
धूसर रज-कण-मण्डित,
फूलों से अपमानित
शूलों से अभिनन्दित,
अंकित कर चिह्न विरल
गिरि-पथ चढ़ रहे चरण !
पथ पर बढ़ रहे चरण !

दश दिशि बिखरी उँगली,
बुझी नख-नखत अवली,
एक दिशा में पगली
कोई गति बाँध चली,
निज अनगढ़ साँचे में
युग-छवि गढ़ रहे चरण !
पथ पर बढ़ रहे चरण !

नील शिराएँ उभरीं,
स्पन्दित आनन्द भरीं,
लहराई ध्वनि - लहरी
गिरि - घाटी में गहरी
युग-द्रष्टा से युग-छवि
लेखा पढ़ रहे चरण !
पथ पर बढ़ रहे चरण !

श्लथ, विजड़ित, रहे हार,
सम्मुख शीतल बयार,
सुखद छाँह, सुमन प्यार,
पर न सके, सब बिसार—
मन्दाकिनि-तट गिरि संकट से
कढ़ रहे चरण !
पथ पर बढ़ रहे चरण !

कर्म-पथ

पथ को करो प्यार,
होंगे सुमन तप्त अंगार !

पथ पर रुदन-हास,
कंटक सुमन-लास,
सुख-दुख सदा पास,
पथ ही अखिल सत्य का द्वार !
पथ को करो प्यार !

यह है मिलन राह,
मिलतीं बढ़ा बाँह,
सन्ध्या - उषा - छाँह,
पथ मुक्ति-साधन, न भ्रम-भार !
पथ को करो प्यार !

हो ध्येय का ध्यान,
दिन-रात सम मान,
मन मत करो म्लान,
बढ़ते चलो, तट कि मझधार !
पथ को करो प्यार !

गति मुक्ति-अभियान,
गति विश्व-वरदान,
गति का करो गान,
गति ही विजय है, अगति हार !
पथ को करो प्यार !

जन देवता

कब तक तुम मौन रहोगे ओ जन देवता ?
कब तक तुम मौन रहोगे ओ गण देवता ?

हो गया प्रभात रात घुल गई,
ज्योति हँसी, दिशा-दिशा धुल गई,
तम से अवरुद्ध राह खुल गई,
फिर भी इस स्वप्न-धार में तन्द्रालस लिये,
कब तक इस भाँति बहोगे ओ जन देवता ?

रात गई पर न खुली अर्गला,
मुक्ति मिली पर न कटी शृङ्खला,
बन्दिनी अभी विमुक्त कुन्तला,
अपने ही घर में पर यह नवीन दासता,
कब तक चुपचाप सहोगे ओ जन देवता ?

गगन मिला पर न पंख खुल रहे,
किरण मिली पर न कमल खिल रहे,
पंथ मिला पर न चरण हिल रहे,
दीप सजल नयनों से निज असीम वेदना,
कब तक तुम मौन कहोगे ओ जन देवता ?

कब तक यह अनृत, यह प्रवञ्चना ?
कब तक यह करुण अश्रु-अर्चना ?
कब तक यह मोह-मरण-साधना ?

क्रान्ति-शान्ति-समता-आनन्द-हेतु क्या कहो,
प्रलयंकर रुद्र न होगे ओ जन देवता ?
कब तक तुम मौन रहोगे ओ जन देवता ?

मुक्ति-दीप

द्वार-द्वार पर अमन्द यह दिया जले !
मुक्त द्वार हों न बन्द यह दिया जले !

सत्य बन असत्-प्रवाह में,
बन प्रकाश तिमिर-राह में,
अमृत-धार मृत्यु-दाह में,
नव-नव रस-रूप-गन्ध-स्पर्श-शब्द ले
प्राण-प्राण बीच यह अमर प्रभा पले !

क्रान्ति को सतत पुकारता,
शान्ति को मगर दुलारता,
स्वप्न सत्य के सँवारता,
विश्व-हित नवीन मुक्ति का सँदेश ले
किरण-पंख पर प्रकाश-विहग उड़ चले !

दीप दीप से गले लगें,
एक रंग में सभी रँगें,
भेद नींद से सभी जगें,
एक स्नेह-धार कोटि दीप में ढले,
एक हों अनेक अन्धकार के छले !

तम की दीवार तोड़कर,
बन्ध दुर्निवार तोड़कर,
मुक्त ज्योति की उठे लहर,

गृह-वन-गिरि-सिन्धु-धार में, गगन तले,
देश-काल से अखण्ड यह दिया जले !
द्वार-द्वार पर अमन्द यह दिया जले !

तमसो मा ज्योतिर्गमय

बुझी न दीप की शिखा अनन्त में समा गई।
अमन्द ज्योति प्राण-प्राण-बीच जगमगा गई!

अथाह स्नेह के प्रवाह में पली,
अमर्त्य वर्त्तिका नहीं गई छली,
असंख्य दीप एक दीप बन गया
कि खिल उठी प्रकाश की कली-कली,
घनान्धकार जल गया स्वयं नहीं हिली शिखा,
प्रकाश-धार में तमस् भरी धरा नहा गई!

अकम्प ज्योति-स्तम्भ वह पुरुष बना,
कि जड़ प्रकृति बनी विकास-चेतना,
न सत्य-बीज मृत्तिका छिपा सकी
उगी, बढ़ी, फली अरूप कल्पना,
न बँध सका असत्-प्रमाद-पाश में प्रकाश-तन,
विमुक्त सत्-प्रभा दिगन्त बीच मुस्करा गई!

मरा न काम रूप कवि बना अमर,
कि कोटि-कोटि कण्ठ में हुआ मुखर,
मिटा न, काल का प्रवाह बन घिरा
असीम अन्तरिक्ष में अनन्त स्वर,
न मन्त्र-स्वर अमृत सँभाल मृण्मयी धरा सकी,
त्रिकाल-रागिनी अनन्त सृष्टि बीच छा गई!

अनेकता अखण्ड एक हो गई,
अभेद बीच भेद-भ्रान्ति खो गई,
अबन्ध गन्ध बँध सकी न कूल में
समष्टि बीच पूर्ण व्यष्टि खो गई,
जिसे न पाश तन बना, न छू सका मरण चरण,
विराट् चेतना अरूप बन स्वरूप पा गई !
बुझी न दीप की शिखा, असीम में समा गई !

मधु ऋतु

मधु ऋतु के कुञ्जों में यौवन की प्यास खिली !
सुधि के सुरभित झोंकों से जीवन-डाल हिली !

किसलय के तन में फूटी मधु की अरुणाई,
बेसुध वन की चेतना उठी ले अँगड़ाई,
मधु-स्वप्न-श्रान्त मधुकर-मन को छवि-छौंह मिली,
मधु ऋतु में बनकर तृप्ति विरह की प्यास खिली !

आई सपनों के तट पर स्वर की स्वर्ण-तरी,
नीलांचल में छिप गीतों की परियाँ उतरीं,
गूँजी जीवन के गुञ्जन से वन-कुञ्ज-गली,
स्वर के वृन्तों पर पिक-प्राणों की प्यास खिली !

जागे धरती के दिन के सतरंगे सपने,
कल्पना उठी खोले कंचन के पर अपने,
मधु गन्ध-अन्ध मन की जागी साधें पगली,
छवि की लपटों में सुधि-वेला की प्यास खिली !

आई नर्तन करतीं कविता की किन्नरियाँ,
मधु से पागल खुल गईं हृदय की पंखुरियाँ,
मलयज-छन्दों में कवि-उर की रस-धार ढली,
केसर के गीतों में पतझर की प्यास खिली !

सागर की पूर्णिमा

सागर से पूनम-चाँद मिला !

कण-कण में बरसाता रस-कण,
अविराम लुटाता नव-जीवन,
लेकर ज्योत्स्ना की रजत-तरी
लहरों पर उतरा नेश गगन,
चाँदनी मरण को जीत रही
अधरों का अमृत-गीत पिला !
सागर से पूनम-चाँद मिला !

पागल ज्यों सागर का कण-कण,
संयम का टूट रहा बन्धन,
मधु के वासन्ती उत्सव पर
यौवन में ज्वार उठा भीषण,
लहरों के मधुवन में जैसे
मधु ऋतु का पहला फूल खिला ।
सागर से पूनम-चाँद मिला !

जल की तम-पूर्ण गुफा ज्योतित,
कण-कण में एक रूप बिम्बित,
पारद-सी ज्योति-शिखा अनगिन
बिखरी हैं लहरों में नर्तित,

चल जल के शीश महल में, लो
बिजली का दीप-स्तम्भ हिला !
सागर से पूनम-चाँद मिला !

हिमालय-सम्बन्धी पाँच सानेट

: १ :

मौन हिमगिरि, मैं तुम्हारे बन्धनों में,
आज बंध शतदल कमल-सा खिल रहा हूँ!
घाटियों के बीच इन मरकत-वनों में
मैं तुम्हारे मन्त्र-स्वर से धुल रहा हूँ!
तन प्रकम्पित देवदारु विशाल बनकर
चपल पूर्वा की लहर में झूमता है
मत्त गज-सा। मैं तुम्हारे इस शिखर पर
हूँ खड़ा, मन मुक्त नभ मे घूमता है।
सोम-रस जो घाटियों की प्यालियों में
ढलकता, पी अमर होता जा रहा मैं।
स्वर्ण गल अविराम नीलम डालियों से
झर रहा, उसमें अतृप्त नहा रहा मैं।
स्वर तरंगित यह कहाँ से आ रहा है?
प्राण में प्रतिध्वनित हो लहरा रहा है?

: २ :

मेरा कवि बनकर इस अनन्त छवि का प्रहरी
बैठा नभ-आँगन बीच आज इस चोटी पर।
सम्मुख लहराता गहन नीलिमा का सागर,
निर्बन्ध बह रही है जिसमें यह दृष्टि-तरी।
उठतीं-गिरतीं उन्नत हिम-शिखरों की लहरें,
अनजान तटों से दूर क्षितिज पर टकरातीं।

तैरती दूर से छाया नौकाएँ आतीं—
खोले जलदों के पाल, स्वप्न ये ज्यों बिखरे।
नीले जलनिधि का तट उभरा है हिम-मण्डित
उत्तर दिशि की सीमा पर ज्यों प्राचीर धवल।
जिस पर ज्योतित आकाश-दीप-सा ध्रुव शोभन।
हिमगिरि-सागर में यह असीम छवि प्रतिबिम्बित;
इस छवि-छाया के चतुर चितेरे नयन विकल,
कर पा न रहे सीमित प्राणों पर आलेखन!

: ३ :

थी पार्वती धरती जलती तप से निर्जल,
था महाकाल ज्यों समाधिस्थ निर्द्वन्द्व अचल,
सहसा झंकृत अनंग-धनु से शर छूट पड़े,
बन पंचवाण के पुष्प बरसते थे बादल!
क्षण-भर घाटी की भँवरों में कर आवर्तन,
क्षण-भर शिखरों के उपलों का कर आलिंगन,
इस महाशून्य की डाली से झर-झर शाश्वत
बह रहे पवन की धारा में ये मेघ-सुमन।
क्षण बन दुकूल शृङ्गों का, क्षण परियों का पर,
घन देवदारु का वलय, वनों के बीच बिखर
अधखुले नयन-नभ में तिर-तिर बनते-मिटते
ये कामरूप घन दिवा-स्वप्न के फूल सुघर!
किसने फैलाया यह हरीतिमा का दुकूल
बँध पा न रहे जिनमें पारद के जलद फूल।

: ४ :

कितना उन्नत हिमगिरि, मैं हूँ कितना लघु नर
कितना श्लथ मैं, कितनी है इसकी विषम डगर
फिर भी जा बैठा हूँ मैं इसकी चोटी पर
पग से अंकित करता मानव-अभियान अमर
मैं पंखहीन पक्षी-सा इस नभ के आँगन
कितने गतिमय निर्बन्ध गगनचारी ये घन

फिर भी इनकी साँसों में भरकर आलिंगन
इतिहास लिख रहा हूँ मैं मानव का नूतन
कितना सीमित मैं, है असीम यह नभ-मण्डल
कितना झंझा-विद्युत्-पूरित इसका अंचल
फिर भी नभ पर लिख-लिख स्वर के अक्षर उज्ज्वल
गुञ्जित करता मैं मानव के जय-गान विमल
मैं जय-विश्वासी पुरुष अतिथि हूँ दूरागत
हँस-हँस करती यह प्रकृति-वधू मेरा स्वागत।

: ५ :

पत्थर भी है कितना रसमय यह जान गया,
इस जड़ में भी है चेतनता, मैं मान गया,
पत्थर की छाती पर सोई है हरियाली
भुज-बन्धन में कस रही लता पहचान गया!
मानिक-मदिरा से भरी घाटियों की प्याली
मधुबालाएँ चम्पई धूप, छाया काली,
वासना नहीं बुझती फिर भी पीकर क्षण-क्षण,
काँपते खड़े शत देवदारु बन रोमाली!
घन की उड़ती परियाँ करती हैं आलिंगन,
पथराये अधरों का करती विद्युत् चुम्बन,
बहने लगता गिरि-शिरा-शिरा में रस मन्थर,
खिल जाते हैं तन में लघु-लघु मुसकान-सुमन!
निर्झर नदियों में गल बहता जिसका अन्तर
जाने क्यों फिर भी कहलाता वह गिरि पत्थर!

विश्व मेरे

विश्व मेरे, मैं मिटा अस्तित्व अपना
चाहता हूँ भूल जाना वह तड़पना,
चाहता हूँ आज मैं स्पन्दन तुम्हारा
चाहता बन जाय सत्य अतीत सपना।
विश्व मेरे, मत सुनो मेरी कहानी,
मैं न कहना चाहता बातें पुरानी,
चाहता हूँ छोड़ना केंचुल पुराना,
चाहता जीवन नया, नूतन जवानी।
विश्व मेरे, मैं बदलता जा रहा हूँ,
काट सब बन्धन निकलता जा रहा हूँ,
चाहता मैं 'तुम' बनूँ, इससे तुम्हारे—
रूप में मैं आज ढलता जा रहा हूँ।
विश्व मेरे, लो मुझे निज में मिला लो!
सिन्धु तुम, मैं बूँद, लो मुझको सँभालो!

विश्व मेरे, मैं तुम्हारा हो गया हूँ,
मैं मिटा निज को तुम्हींमें खो गया हूँ,
तुम गगन-विस्तार मैं झंकार बनकर
अब तुम्हारी ही लहर में सो गया हूँ।
विश्व मेरे, अब तुम्हीं हो, मैं नहीं हूँ,
मैं न कोई और, जो तुम हो, वही हूँ,
पास की दूरी मिटाकर मुक्त निज से
आ गया मैं, तुम जहाँ मैं भी वहीं हूँ।

विश्व मेरे, मिट गई मेरी व्यथा है,
एक ही मेरी तुम्हारी अब कथा है,
एक ही सुख और दुख मेरे-तुम्हारे
मन हुआ तुममय, नहीं अब अन्यथा है।
विश्व मेरे, रिक्त मैं तुमसे भरा हूँ!
मर गया मैं, हो गया अब दूसरा हूँ।

विश्व मेरे, स्वप्न मैं बुनता नया हूँ,
आँसुओं के अग्नि-कण चुनता नया हूँ,
जो अनागत की कथा सौ-सौ लिये उन
आँधियों में गीत मैं सुनता नया हूँ।
स्वर-सुरभि उठती लपट की क्यारियों से,
छन्द बनते जा रहे चिनगारियों से,
है ध्वनित आकाश जिसके घोर रव से,
गीत गुञ्जित नग्न तन नर-नारियों से।
चाँदनी बेबस पिघलती जा रही है
रूप की दुनिया बदलती जा रही है।
सत्य के निष्करुण विद्युज्जाल से घिर
कल्पना सुकुमार जलती जा रही है।
उठ रहा जीवन मरण-परिधान लेकर
स्वप्न यह कितना सुखद कितना भयंकर?

विश्व मेरे, यह नया मेरा सवेरा,
मिट गया मानस-क्षितिज का क्षीण घेरा,
ज्योति की परियाँ धरा पर मौन उतरीं,
ओस के आँसू धुले, खोया अँधेरा।
यह नये दिन की उषा मुसका रही है,
इन्द्रधनुषी छवि धरा पर छा रही है,
शून्य में उड़कर गए थक पंख जिसके
कल्पना अब भूमि पर लहरा रही है।
चल पड़े नूतन डगर पर ये चरण हैं,

और पदतल में झुके जीवन-मरण हैं,
सिन्धु में हरियालियों के तैरते - से
स्वप्न कल के देखते मेरे नयन हैं।
भूमि पर उर्वर उगी कविता नई है!
सन्धि-वेला में बनी जो रसमयी है!

विश्व मेरे, बह रही है काल-धारा
अनवरत, जिसका नहीं कोई किनारा,
तोड़ती पथ के सभी तृण-लता-पादप
पर्वतों को; नाश जिसका मन्त्र प्यारा
गूँजता भू पर दिगन्तों बीच; सुनकर—
डर रहे हम; बह रहे बेबस लहर पर
क्षुद्र तिनकों-से। निपट अनजान मानव
हम न अब बनकर रहेंगे। हम अनश्वर
शक्ति के हैं केन्द्र, जीवन के प्रणेता।
क्षुद्र तिनके काल-धारा के विजेता
अब बनेंगे, एक-एक नहीं सहस शत
एक होकर। आत्म मुक्त समष्टि-चेता—
व्यक्ति होगा, काल के रथ पर चढ़ेगा!
प्राणवन्त, नई दिशाओं में बढ़ेगा!